लक्ष्मी नैथानी
प्रधानाध्यापक
राजकीय प्राथमिक विद्यालय
कांडा, कल्जीखाल, पौड़ी

शिक्षक होना जीवन को सार्थकता देता है

सहायक अध्यापक – दीपमणि कुकसाल
सी.आर.सी.सी. – महेन्द्र कुकसाल
भोजनमाता – आनंदी देवी, सुनीता देवी
नामांकन – 35

पीपल के पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर एक बच्चा डॉर (एक तरह का हुड़का) बजा रहा है, साथ में हैं कुछ और बच्चे जो किसी मीठी सी धुन में गा रहे हैं। धुन के साथ–साथ उनके कदम उठते–पड़ते हैं, वे गोल घेरे में घूमते हैं। 'जौ जस देई दैणा ह्वे जई, देशु मां क देशा मेरा गढ़देश..' यह एक शगुन गीत है, जो घर में किसी शुभ अवसर पर महिलाएं गाती हैं।

बच्चे कोरस में जिस तरह तल्लीन हैं, उससे यह अनुमान लगाना कठिन हो रहा है कि वे कोई अभिनय कर रहे हैं या वास्तव में उनका बोला गया शब्द, शब्द से निकली धुन उनके मन से निकल रही है। लड़के सुंदर टोपियां और साफा पहने हैं, जबकि लड़कियां पिछोड़ी और घाघरा पहने नाच रही हैं। थोड़ी ही देर में वे 'हम उत्तराखंडी छा' गीत पर सुंदर नाटय–रचना करते हैं। इस रचना में कोई बैलों की जोड़ी के साथ हल जोत रहा है। कोई घास काट रहा है, कोई बकरी चरा रहा है तो कोई उत्तराखण्ड राज्य निर्माण की लड़ाई लड़ रहा है। बॉर्डर में लड़ाई चल रही है और हुड़का बैल के साथ खेतों में रोपाई हो रही है। पहाड़ का विस्तृत संसार इस गीत में बड़ी जीवंतता के साथ आंखों के सामने आ जाता है।

ये बच्चे प्राथमिक विद्यालय कांडा के बच्चे हैं। ये बच्चे ही हैं लेकिन इन्हें मंझे हुए फनकारों से किसी मायने में कम नहीं माना जा सकता। स्कूल में

लोक गीत और लोक नृत्य सीखने का, कहने का, बोलने का और सुनने का जरिया है। स्कूल अपने गांव को अपने इलाके को जबां देता हुआ एक सांस्कृतिक केंद्र है।

अपने साथी डॉ. दीनानाथ मौर्य के साथ मैं यहां पहुंचा हूं श्रीनगर से पौड़ी होते हुए कोटद्वार तक पहुंचाने वाली सड़क के जरिये। ज्वाल्पा देवी मंदिर के थोड़ा आगे से एक कच्ची सड़क हमें पूर्वी नयार नदी पार कराते हुए कांडा गांव की तरफ ले आती है। दीनानाथ ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली से हिंदी साहित्य में पीएच. डी. की है और वे इन दिनों पौड़ी के गांवों में शिक्षा का काम कर रहे हैं।

यहां हम इस स्कूल की हेड टीचर लक्ष्मी नैथानी जी से मिलने पहुंचे हैं। हम यहां इसलिए पहुंचे हैं क्योंकि हमने सुना था कि यह स्कूल एक नवाचारी स्कूल है और यहां पढ़ाने वाले दोनों शिक्षक बच्चों के साथ मिलकर कुछ न कुछ नया करते रहते हैं। लेकिन, पहले स्कूल से उठती मधुर धुनें और फिर स्कूल का चित्ताकर्षक परिवेश हमें यह सोचने के लिए विवश करता है कि यहां और भी बहुत कुछ है। लोक गीत और लोक नृत्य यहां कोई आज का उत्सव नहीं बल्कि आम पाठयचर्या है। शायद यही वजह रही हो कि यहां पहाड़ के सबसे बड़े गायक नरेंद्र सिंह नेगी जी को भी आना पड़ा। वे कुछ साल पहले यह देखने यहां पहुंचे कि आखिर यहां की उत्साही शिक्षिका बच्चों को किस तरह सिखाती हैं। लोक भाषा, लोक गीत और लोक नृत्य के जरिये बच्चे कैसे सीखते हैं। नेगी जी ही नहीं शिक्षा विभाग के भी कई अधिकारी पौड़ी और देहरादून से यहां आ चुके हैं। पिछले साल मैडम नैथानी को ऐसे ही रचनात्मक प्रयास के लिए शैलेश मटियानी पुरस्कार भी मिल चुका है।

स्कूल को और करीब से समझने के लिए मैं बच्चों से मुखातिब होता हूं। मैं उनके सामने खड़ा होता हूं, तब तक सवालों की बौछार होने लगती है। मेरे बारे में, मेरे साथी के बारे में, उत्तराखण्ड के बारे में, देश के बारे में, दुनिया और ब्रह्मांड के बारे में। सवाल ही सवाल। वे पूछ ही नहीं रहे बल्कि निर्भय होकर पूछ रहे हैं, बिना लाग–लपेट। सही–गलत का संकोच मन में लाये बगैर। मैं भी सवाल करता हूं, उनके उत्साह को देखकर मैं थोड़ा अटपटे सवाल करता हूं। आप स्कूल क्यों आते हो, क्या है यहां? सबसे दूर से स्कूल आने वाला बच्चा कितने कदम चलकर स्कूल पहुंचता है? नयार नदी कहां से आती है, कहां को जाती है? मुझे लगता था शायद यह सवाल उनके लिए चुनौती बनेंगे, उन्हें लगेगा मैं ऐसे सवाल क्यों पूछ रहा हूं। मगर, वे जिस अंदाज में मुझे जवाब देते हैं वह मुझे चकित करता है। वे सही उत्तर की परवाह नहीं करते, बल्कि सवाल का मजा लेते हैं। पहेलियों में मुझे उल्टा फंसाते हैं। छोटे–छोटे बच्चे जो अभी स्कूल में नामांकित नहीं हुए हैं लेकिन अपने भाई–बहनों के साथ स्कूल आना, यहां का चलन सीख रहे हैं, वे भी मुझे उत्तर देते हुए नहीं लजाते। मैं बच्चों से पूछता हूं कि आप अपने गांव के ऊपर दिखने वाली पहाड़ की चोटी पर कभी गए हैं, तो कुछ बच्चे बताते हैं हां वे वहां जानवरों को लेकर गए हैं। तब मैं पूछता हूं आप देहरादून गए हैं कभी? मुझे पहले हैरानी होती हैं एक भी बच्चा देहरादून नहीं गया है। बच्चे इस सवाल का जवाब न दे पाने के कारण थोड़ा मायूस होते हैं तब मुझे अपने सवाल पर ही कोफ्त होती है, आखिर मैंने यह कैसा सवाल कर दिया। बच्चों ने इसके बाद बताया कि उनके पास का सबसे बड़ा नगर कोटद्वार है और दो बच्चे वहां गए भी हैं। लेकिन, बच्चे मुझे थोड़ी ही देर में अपने ननिहाल और नातेदारों के गांवों के बारे में सुंदर–सुंदर बातें बताते

हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने दुनिया नहीं देखी है, बल्कि ऐसा जरूर है कि हमारे ही सवाल उनकी दुनियाओं के नहीं होते।

हालिया समय में समाज में आये सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों के चलते अपेक्षित रूप से समर्थ तबके ने अपने बच्चे प्राइवेट स्कूलों में भर्ती करवा लिए हैं। ये स्कूल बड़े–बड़े नगरों में ही होते हैं। हालांकि, 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009' के कारण सरकारी स्कूलों में हाशिए के तबकों से बड़ी संख्या में बच्चे नामांकित भी हुए हैं। ये ऐसे बच्चे हैं जिनके पास घरों में पढ़ने–लिखने की सामग्री नहीं होती और न ही अभिभावक शिक्षा ग्रहण करने में बच्चों की किसी तरह की मदद कर पाते हैं। बच्चों का भ्रमण के लिए बाहर जा पाना तो ऐसे समाजों के लिए विलासिता जैसी चीज है। पहाड़ के संदर्भ में पलायन भी एक बड़ी परिघटना है, जिस कारण परिवेश में भी पढ़ने–लिखने और साझीदारी की संस्कृति सीमित होती गयी है। ऐसे में बच्चों की पढ़ाई–लिखाई, उनके विश्व दृष्टिकोण का पूरा दारोमदार शिक्षक के ऊपर आ जाता है।

ऐसे बच्चों को पढ़ने–लिखने की संस्कृति का हिस्सा बनाना जिन्होंने पहले किताब न देखी हो, जिनके घर में पढ़ने–लिखने की कोई सामग्री न हो, जिनकी घर की भाषा स्कूल की भाषा से अलग हो बेहद चुनौतीपूर्ण काम है। ऐसी ही चुनौती को स्वीकार किया है यहां की शिक्षिका लक्ष्मी नैथानी मैम ने। लक्ष्मी जी मानती हैं कि चुनौती शिक्षक की खुद को तैयार करने की अधिक है और उन्होंने खुद को इस नयी परिस्थिति के लिए तैयार कर लिया है। वह कहती हैं कि उन्हें न तो इन बच्चों के संपन्न घरों का न होने से दिक्कत है, न ही उनके साथ घुलने–मिलने में।

वह बताती हैं स्कूल की जो सुंदर इमारत अभी दिख रही है उसके निर्माण के वक्त वे यहीं इसी के एक कमरे में रहती थीं। तब इसी गांव के बच्चे उनके साथ होते थे। कम से कम स्कूल के भीतर तो इन बच्चों के बीच जाति, लिंग और वर्ग का भेद नहीं है। वह जोड़ती हैं हालांकि यह तो हुआ ही है कि अब थोड़ा–सा पैसा आने पर लोग गांव छोड़ देते हैं और नगर के किसी भी प्राइवेट स्कूल में बच्चों का दाखिला करा देते हैं। वह बताती हैं कुछ ही वर्ष

पहले उनके अपने बच्चे सतपुली के प्राइमरी स्कूल से पढ़े थे, जहां इससे पहले वे पढ़ाती थीं। मगर, अब जो भी बच्चे हैं वे पूरे बच्चे हैं, वे गरीब हैं इसमें उनका कोई दोष नहीं। उनके ये हालात न रहें, उनके जीवन में बेहतरी आये इसके लिए हम शिक्षकों पर जिम्मा है। वह बताती हैं कि हर साल उनके स्कूल से पढ़े बच्चे राजीव गांधी नवोदय विद्यालय, हिमज्योति स्कूल देहरादून आदि के लिए चयनित होते हैं। जहां से वे आगे की पढ़ाई जारी रख पाते हैं। वो हमें बताने लगती हैं कि कैसे वो उन बच्चों से बाद में भी जुड़ी रहती हैं। अभिभावकों में शिक्षा को लेकर कोई विशेष उत्साह नहीं है लेकिन वे खुद बच्चों को अपने खर्चे पर शहर ले जाकर उन्हें इम्तिहान दिलवाती हैं। उनके वजीफे के लिए भी प्रयास करती हैं। बातों–बातों में ही वे हमें स्कूल में उनकी मदद को आये दो बच्चों से मिलवाती हैं, जिनमें से एक अभी इंटर में पढ़ रही है और एक एक इंटर पास करने के बाद आगे की तैयारी कर रहा हैं। छुट्टी पर होने के कारण आज स्कूल में सहायक अध्यापक दीपमणि जी नहीं हैं तो ये दोनों मैम की मदद को आये हैं। वे हमें बताते हैं कि मैम उनके लिए आज भी सबसे बड़ी टीचर हैं।

अभी कुछ दिन पहले राज्य स्तर पर हल्द्वानी में आयोजित हुई अंताक्षरी प्रतियोगिता में भाग लेकर लौटे बच्चों से भी मैम हमें मिलवाती हैं। बच्चे कोटद्वार मार्ग से हल्द्वानी गए थे और उन्हें रास्ते में जो–जो चीजें दिखीं थी वे उनके बारे में मुझे बताते हैं। इस प्रतियोगिता में इस स्कूल को राज्य स्तर पर दूसरा स्थान हासिल हुआ है। मैम से आगे बात करते हुए हमें मालूम पड़ता है प्रतियोगिताओं में बच्चों को अधिक से अधिक शिरकत कराना उनका सबसे बड़ा जूनून है। वे इसे सीखने–जानने का प्रभावी औजार बताती हैं।

मैं मैम से पूछता हूं आप इतनी आसानी से यह सब कैसे कर लेती हैं, क्या अभिभावक और विभाग इस सब के लिए आसानी से राजी हो जाते हैं?

मैम थोड़ी देर खामोश रहती हैं, फिर हल्की–सी मुस्कान के साथ बोलना शुरू करती हैं। वे अपनी डायरी भी खोल लेती हैं, यह कहते हुए कि इसमें सब दर्ज है, पूरी कहानी। पहले इस स्कूल की कहानी आपको बताती हूं। 2001 में मैं प्राइमरी स्कूल सतपुली से हेड टीचर बनकर यहां आयी। इससे पहले भी दो बार प्रमोशन मिला था, वहां मन रमा था सो लिया नहीं। लेकिन जब यहां आई तो देखा स्कूल के नाम पर एक खंडहर था बस। मैं एक भरे–पूरे स्कूल से आई थी लेकिन यहां स्कूल को देख पाना एक हसरत थी। प्रांगण में एक हरा पेड़ नहीं था, सिवाय एक पीपल के जो मुझे आगे बढ़ने का हौसला देता रहा। कुछ समय बाद स्कूल निर्माण के लिए पैसा जारी हुआ। स्कूल बिल्डिंग बनाने में बहुत मुश्किल झेलनी पड़ी। मैंने कभी कोई कंस्ट्रक्शन नहीं करवाया था, बिल्कुल भी अनुभव नहीं था। ग्राम प्रधान भी तब साथ नहीं दे रहे थे, जैसा होता है सरकारी कामकाज में। लोग सोचते हैं सरकारी धन तो मिल बांटकर खाने के लिए होता है। मैं तो सपने में भी कुछ गलत नहीं सोच सकती थी। साफ ऐलान कर दिया था, विद्यालय का एक–एक पैसा विद्यालय में लगेगा। मैं समय पर स्कूल आ जाती, जरूरत पड़ने पर रात को भी स्कूल में रुक जाती। गांव के लोग सोचते थे मैं शायद अपने लिए ये सब कर रही हूं। कई बार काम में बाधा डाली। मगर मैं डिगी नहीं। स्कूल की पढ़ाई भी चलती रही और निर्माण भी जारी रहा।

काम पूरा हुआ तब भी प्रधान जी ने चेक में साइन नहीं किये। मैंने अपने पति से पैसे मांगकर मजदूरों का पैसा चुकाया। बाद में खैर उन्होंने साइन कर दिए। अंततः 2006 में मेरे स्कूल को ए श्रेणी का उत्कृष्टता पुरस्कार और मुझे जिले में उत्कृष्ट शिक्षक पुरस्कार मिला। विद्यालय की बिल्डिंग बन गयी तो मैं स्थानीय विधायक को भी यहां लेकर आई। उन्होंने स्कूल के लिए एक लाख देने की और गांव के लिए सड़क की घोषणा की। आज आप जिस सड़क से आये हैं वह इसी स्कूल के चर्चा में आने का परिणाम है। उसी साल हमारे विद्यालय ने लक्ष्मण झूला में आयोजित राज्य स्तरीय

बाल मेले में भाषण, कविता और लोक नृत्य में प्रथम स्थान हासिल किया। तभी हमारे स्कूल को शैक्षिक सेमिनार के लिए 30 हजार मिले, जिसके लिए एस.सी.ई.आर.टी. की टीम यहां पहुंची। 2007 में दिव्यांग बच्चों का राज्य स्तरीय स्काउटिंग कैंप हुआ, जिसमें मेरी टीम को प्रथम स्थान मिला। 2009 में स्कूल ने जिला स्तरीय अंताक्षरी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान हासिल किया। 2010 में एक छात्र अजय का राजीव गांधी नवोदय विद्यालय में चयन हुआ। इस होनहार बच्चे के पिता नहीं थे, मैं खुद उसका एडमिशन कराकर आयी। 2011 में दीपिका का राजीव गांधी और नीला का हिमज्योति स्कूल के लिए चयन हुआ। इसके बाद नीतू और निकिता का भी हिमज्योति के लिए चयन हो गया। 2016 में कीर्तिका का भी हिमज्योति के लिए चयन हुआ। हालांकि बाद में किन्हीं कारणों से वह देहरादून नहीं जा सकी। 2015 में शैलेश मटियानी पुरस्कार की जो राशि मुझे मिली उससे मैंने स्कूल का भव्य वार्षिकोत्सव कार्यक्रम कराया और कुछ पैसे खुद के लगाकर स्कूल के लिए बड़ा एल.सी.डी. टी.वी. ले आई। अब बच्चे उसका लाभ उठा रहे हैं। पेन ड्राइव में सुंदर गीत लेकर आती हूं, बच्चे उनका प्रयोग करते हैं।

काम के प्रति समर्पण और पारदर्शिता मेरे लिए सबसे बड़ी चीज है। इसके बाद गांव के लोगों का मेरे बारे में मत बदला है। आज वे मेरे साथ हैं, उन्हें भरोसा हो गया है कि मैं एक पक्की टीचर हूं। ऐसी जो ठान लेती है पूरा करके रहती है। यहां बच्चों से क्या कराना है, कब तक रोके रखना है उस सब के लिए वे मुझ पर पूरा भरोसा करते हैं। अशिक्षा बहुत बड़ा श्राप है, लेकिन अनपढ़ लोग भी इसका महत्व समझते हैं। कोई नहीं चाहता उसका बच्चा बिना पढ़े रहे और सुस्त बना रहे। यहां के बच्चों के पास मौके बहुत कम हैं। मेरी कोशिश रहती है कि उनके हाथ से कोई एक मौका भी न छूटने पाये। आपने राजपथ पर होने वाली परेड में आग के गोले से फौजियों को निकलते देखा होगा, मेरे बच्चे भी वह कर लेते हैं। बड़े बच्चे लोकनृत्य के दौरान मीनार भी बनाते हैं। बच्चों में अपार क्षमताएं होती हैं, बस उन पर भरोसा करना पड़ता है और उन्हें मालूम भी होना चाहिए उन पर भरोसा किया जा रहा है।

अद्‌भुत है यह सब। यही कामना करता हूं कि स्कूल से और उसके बच्चों से इस तरह का लगाव हमारे सभी शिक्षकों में आ जाए। आज सबसे बड़ी चुनौती तो यही है कि सरकारी मशीनरी ही अपने काम को अपनाती नहीं है या स्वीकार नहीं करती। लेकिन, हर जज्बे के पीछे कोई न कोई प्रेरणा तो होती ही है। आपको ऐसे समर्पित होकर काम करने की प्रेरणा कहा से मिली?

कह नहीं सकती कहां है मेरी ऊर्जा का स्रोत। कभी–कभी खुद भी हैरान हो जाती हूं। मेरे इस तरह के समर्पण से परिवार भी प्रभावित हुआ। मगर कभी ढीली पड़ गयी ऐसा तो याद नहीं आता। बहुत कम छुट्टियां ले पाती हूं, ले ही नहीं पाती। मेरा समय या तो स्कूल के लिए है या कार्यक्रमों और प्रशिक्षणों के लिए। शायद बचपन के कठिन परिश्रम और उस समय के स्कूल में मेरी प्रेरणा है। शुरुआत से 12वीं तक की पढ़ाई राजकीय बालिका इंटर कालेज, लैंडसडाउन में हुई। वह बताती हैं कि इस स्कूल में पढ़ना उनके जीवन के लिए बड़ा टर्निंग प्वाइंट था। उस समय अनुशासन बहुत सख्त था, शिक्षक बड़े बेरुखे थे लेकिन स्कूल नामक संस्था मजबूत थी। पांच बहनों और दो भाइयों में मैं सबसे बड़ी होने के कारण छोटे भाई–बहनों की परवरिश और शिक्षा में भी शामिल रही। आज सभी पांच बहनें शिक्षिकाएं हैं, एक भाई अमेरिका में है और दूसरा नेवी में अफसर है। ससुराल में भी पति की चार बहनें हैं, जो सभी शिक्षिकाएं हैं। हम बहनें आपस में मुकाबला करती हैं, अपने स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए। तब हमारी जी.जी.आई.सी. में एक शिक्षिका थीं सोलोमन मैम।

उनका मुझ पर बहुत प्रभाव रहा। आज भी वे मुझे याद रहती हैं। खेल वाली कमला पाण्डे मैम की तो जीवन भर शुक्रगुजार रहूंगी। मेरा खेलने का बड़ा मन होता था बचपन से ही, लेकिन भाई–बहनों के कारण मौका ही नहीं मिलता था। नवीं में पहुंच चुकी थी, एक दिन पाण्डे मैम ने बच्चों को प्ले ग्राउंड में बुला लिया। उन्होंने लड़कियों को चक्कर लगाने के लिए कहा। सारी लड़कियां तीन–चार चक्कर लगाकर थककर बैठ गयी। मैं तीस चक्कर तक दौड़ती रही, फिर उन्होंने मुझे रोक लिया और कहा– मुझे जैसी रेसर चाहिए थी मिल गयी है। इसके बाद में राज्य स्तर पर एथलीट, वॉलीबाल, बास्केट बाल और कब्बडी खेलने गयी। मैं उस दिन शायद इसलिए इतना दौड़ गयी क्योंकि मुझे पैदल भागकर चलने की आदत लग चुकी थी। आज भी मैं स्कूल तक छह किलोमीटर पैदल चलकर आती हूं। गाड़ी वालों से पहले पहुंच जाती हूं और थकती नहीं। 12वीं के बाद कॉलेज पढ़ने का मन था लेकिन कॉलेज दूर होने और परिवार की स्थिति ठीक न होने के कारण सिलसिला रुक गया। सिलाई–कढ़ाई का प्रशिक्षण लेने लगी। मां को लगता था कि मैं कुछ कर सकती हूं, सो उन्होंने एक दिन पिताजी से कहलवाकर मेरा सी.पी.एड. का फॉर्म भरवा दिया। पिताजी खुद मेरे साथ इलाहाबाद गये। वहां एक साल का प्रशिक्षण किया। लेकिन जब नियुक्ति होनी थी मेरी उम्र कम हो गयी और अगले साल से सी.पी.एड. को सी.टी. में नियुक्ति पर रोक लग गयी। शायद मुझे कुछ और करना था, यहां आना था इन प्यारे बच्चों के बीच इसलिए। बाद में बी.टी.सी. और बी.एड. भी किया। सेवा में रहते हुए अंग्रेजी साहित्य और राजनीति विज्ञान में एम. ए. भी किया। लेकिन सबसे बड़ा स्कूल तो वही था– जी.जी.आई.सी. लैंडसडाउन।

शिक्षक का काम अकादमिक काम है। खासकर छोटे बच्चों को सिखाने के लिए एक खास तरह के प्रशिक्षण की जरूरत होती है। और शिक्षक को खुद से भी प्रयासरत रहना पड़ता है। आप इस नजरिए से कभी सोचती हैं?

एक शिक्षक को रोज ही सीखना होता है या कहना चाहिए रोज ही सीखना चाहिए। बच्चे क्या समझेंगे, बच्चे खुद क्या सोचते रहते हैं, बच्चों से किस भाषा में, किन शब्दों में और किन बहानों से बात की जाए यह सोचना तो

रोज का ही काम है शिक्षक के लिए। एक तो एक्टिविटी सोचनी पड़ती है दूसरा उस पर चिंतन भी करना पड़ता है। विभाग की ओर से जो भी औपचारिक प्रशिक्षण किये जाते हैं मैं उनको गंभीरता से लेती हूं। हां कई बार अपेक्षाएं ज्यादा भी रहती हैं, उतना नहीं मिल पाता। एक प्रशिक्षण याद आता है अल्मोड़ा डाईट में हुआ था, 2001 का टी.ओ.टी. प्रशिक्षण. यू.पी. एस.सी.ई.आर.टी. से आये प्रशिक्षकों द्विवेदी जी, मदन मोहन पाण्डेय जी और बंगारी जी ने यह प्रशिक्षण बहुत ही शानदार कराया था। प्रशिक्षण को बहुत रोचक, लचीला और आनंदमय बनाया गया था। तब के सभी प्रतिभागी इस प्रशिक्षण को आज भी याद करते हैं। प्रशिक्षण गीत और कविता के साथ शुरू होता और सांस्कृतिक संध्या के साथ संपन्न होता। अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन की ओर से करायी गयी एक–दो कार्यशालाओं में भाग लेने का अनुभव हाल में मिला। वे बहुत अच्छे लगे। कुछ समय से मैं कल्जीखाल में गठित सृजन समूह से जुड़ी हूं। समूह में पढ़ने–लिखने और शिक्षण में रोचकता लाने पर बात होती है। हाल ही में सृजन समूह द्वारा बच्चों के लिए तीन दिवसीय कार्यशाला आयोजित की गयी थी। कुछ दिन बाद ऐसे सभी चयनित स्कूलों के बच्चों का प्रदर्शन किसी बड़े कार्यक्रम में होगा। उससे पहले आयोजित प्रशिक्षण के फॉलो–अप पर बात होनी है। प्रशिक्षण अगर अच्छे हों तो शिक्षक को नयी ऊर्जा देने वाले साबित होते हैं। उनका असर स्कूल में आता ही आता है। हाल में मैंने 'अशोक की कहानी' आलेख पढ़ा था, मैं उसे पढ़कर कई दिनों तक सो नहीं पायी। एक बच्चा जो अपनी तरह सीख रहा था, शिक्षक के हतोत्साहित करने और वर्णमाला विधि से न सीख पाने पर उसकी उपेक्षा से उसका स्कूल आना छूट जाता है। बाद में सरकारी स्कूलों में वह पारिवारिक पृष्ठभूमि कमजोर होने की वजह बताकर ड्रॉप आउट दिखाया जाता है। झकझोर देने वाला लेख था। आज भी ऐसे बच्चे ड्रॉप आउट हो रहे हैं, लेकिन शिक्षक, शिक्षा व्यवस्था और हमारा पूरा तंत्र उनकी प्रगति को लेकर सतही बातें करते हैं।

भोजन के बाद मैम ने हमें अलग–अलग समूह में बांटे गए बच्चों के कौशलों के बारे में बताया। उन्होंने हमें स्कूल में किये जा रहे विविध क्रियाकलापों और पहलकदमियों से अवगत कराया। स्कूल के अंत में एक सुंदर चांचरी

नृत्य बच्चों ने किया। कितने पारंगत हैं ये बच्चे और उनकी कला और शिक्षा कितनी घुली–मिली है। स्कूल के बाद मैम और हम दोनों कुछ कदम साथ–साथ चले। फिर हमारी राहें जुदा हो गयीं। हमने उन्हें सड़क से नीचे नदी के ढलान की तरफ ओझल होते देखा, जो उनका रोज का रास्ता है।

(लक्ष्मी नैथानी से हुई भास्कर उप्रेती व दीनानाथ मौर्य की बातचीत पर आधारित)